ओ३म्

‘सत्य और अहिंसा का स्वरूप’

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

आजकल धर्म और राजनीति में सत्य और अहिंसा की बहुत चर्चा होती है। हमें लगता है कि इनके वास्तविक स्वरूप व इनके प्रयोग के विषय में लोगों में अनेक भ्रान्तियां है। इसलिए हम आज इस विषय में कुछ विचार कर रहे हैं। सत्य और अहिंसा का वेद से लेकर सभी शास्त्रों में वर्णन व गान किया गया है। ईश्वर का पहला प्रमुख नाम ही सच्चिदानन्दस्वरूप है। सच्चिदानन्द तीन शब्दों का समुदाय है जिसमें सत्य, चित्त और आनन्द इन तीन गुणों का समावेश है। सत्य किसी पदार्थ की सत्ता को कहते हैं। ईश्वर है और उसकी सत्ता भी है, यह यथार्थ है। इसलिये ईश्वर को सत्य कहा गया है। व्यवहार में भी सत्य व असत्य शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जो पदार्थ जैसा है, उसको उसके यथार्थ स्वरूप के अनुरूप जानना व मानना सत्य कहलाता है। यदि किसी को उसका सत्य स्वरूप विदित नहीं है, और वह फिर भी उस अवास्तविक स्वरूप को जिसे वह फली प्रकार से जानता नहीं है, मानता है तो वह उसका असत्य स्वरूप कह सकते हैं। व्यवहार में जब सत्य व असत्य का प्रयोग होता है तो कहा जाता है कि मनुष्य को सत्य बोलना चाहिये, असत्य नहीं बोलना चाहिये। सत्य वह है जो हमारे ज्ञान में है अर्थात् जैसा हम अर्थात् हमारी आत्मा जानती हैं। कई बार हम स्वार्थ व प्रलोभनों के कारण सत्य को छुपाते हैं और उससे उलटा व उससे भिन्न बात कहते हैं तो यह असत्य हो जाता है। ऐसा करना असत्य या बुरा होता है। ऐसा किसी को भी नहीं करना चाहिये। प्राचीन काल में जब बच्चा गुरुकुल में अध्ययन के लिए प्रवेश करता था तो उसे शिक्षा देते हुए आचार्य व बालकों का प्रतिनिधि पिता कहा जाता था कि सदा सत्य बोलना असत्य मत बोलना। सत्य बोलना धर्म है और असत्य बोलना अधर्म या पाप है। हमारे शास्त्रों का एक प्रसिद्ध वाक्य वा सूक्ति है **‘सत्यमेव जयते नानृतं’** अर्थात् सदा सत्य की ही जीत होती है असत्य की नहीं। इस कारण सत्य बोलना मनुष्य के लिए आवश्यक है और उसका व्यवहार भी सत्य पर ही आधारित होना चाहिये।

सत्य का व्यवहार करने के लिए यह आवश्यक है कि हम जिसके प्रति सत्य का व्यवहार कर रहे हैं वह भी निर्दोष हो और हमारे प्रति सत्य का व्यवहार करे। यदि दूसरे व्यक्ति का उद्देश्य द्वेषपूर्ण हो तो फिर ऐसे व्यक्ति के प्रति सत्य का व्यवहार करने से पूर्व उससे होने वाले हानि व लाभों पर विचार कर लेना उचित होता है। यह तो निश्चित है कि जो व्यक्ति सच्चा व सत्य पर दृण है उसके प्रति व्यक्तिगत व्यवहार करते हुए हमें सत्य का पालन वा व्यवहार ही करना चाहिये। यदि वह हमसे छल कर कुछ पूछ रहा है तो हमें यह ज्ञात होना चाहिये कि उसका उद्देश्य क्या है और वह हमारी जानकारी का सदुपयोग करेगा या दुरुपयोग। यदि हमारे सत्य बोलने से किसी की हानि होती है, प्राण जा सकते हैं व अन्य प्रकार से दुःख व पीड़ा हो सकती है तो हमें विचार करना चाहिये और ऐसा सत्य बोलना चाहिये जो प्रिय हो परन्तु अनिष्ट किसी प्रकार अपना व दूसरों किसी का न हो। ऐसा कहा जाता कि किसी निर्दोष के प्राण बचाने के लिए यदि मौन रहा जाये तो वह अच्छा होता है। उदाहरण भी यह हो सकता कि एक व्यक्ति के पीछे कुछ हत्यारे घूम रहे हैं। वह हमसे पूछे कि अमुक व्यक्ति किधर गया? क्या आपने देखा? ऐसी परिस्थिति में जानते हुए भी यही कहना उचित है कि हमने नहीं देखा। इससे उसकी प्राण रक्षा हो जाती है। शहीद भगत सिंह ने जब लाला लाजपतराय जी के हत्यारे साण्डर्स को गोली मारी तो वह डीएवी कालेज लाहौर के प्रांगण से होकर भागे थे। वहां इतिहासविद् पं. भगवददत्त जी, अमरस्वामी जी आदि उपस्थित थे। उन्होने उन्हें जाते हुए देखा था। कुछ ही क्षणों मे पुलिस वहां आई और इनसे पूछा तो इन्होंने उत्तर दिया कि हमने नहीं देखा। अतः सत्य का प्रयोग सोच समझ कर करना चाहिये। रामायण और महाभारत

में सत्य व असत्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अहिंसा की रक्षा के लिए कई बार हिंसा आवश्यक होती है, उसके भी अनेक उदाहरण हैं।

ऐसा माना जाता है कि जो असत्य दूसरों के हित के लिए बोला जाता है, वह असत्य नहीं होता। सत्य बोलने से परिणाम भी शुभ ही होना चाहिये। दुष्टों के प्रति सत्य का व्यवहार करना उचित प्रतीत नहीं होता। जो लोग हमारे बन्धुओं व धर्म के शत्रु हैं, उनके प्रति यदि हम सत्य का कोमल व्यवहार करते हैं तो इसके घातक परिणाम हो सकते हैं। इतिहास इसके उदाहरणों से भरा है। इसी कारण वेदों के ज्ञाता, ईश्वर के साक्षात्दर्शी ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने नियम बनाया है कि सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये। यहां धर्मानुसार और यथायोग्य शब्दों पर विचार करना चाहिये और उसके अनुरूप ही हमारा व्यवहार होना चाहिये। चोर के प्रति उसके अनुरूप यथायोग्य व्यवहार होना चाहिये। झूठे व छली व्यक्ति व समुदायों के प्रति भी धर्मानुसार व यथायोग्य व्यवहार ही करना चाहिये। हर परिस्थिति में सबसे एक समान सत्य का व्यवहार करना उचित नहीं प्रतीत होता। यह हानिकारक व घातक हो सकता है। देश व समाज के हित के लिए यदि कुछ असत्य भी कहना पड़े तो करना चाहिये परन्तु अपने व्यक्तिगत हित व स्वार्थ के लिए असत्य का व्यवहार उचित नहीं है। इसके लिए हमें श्री राम, श्री कृष्ण, महात्मा चाणक्य, ऋषि दयानन्द आदि महापुरूषों के जीवनों सहित नीति ग्रन्थों चाणक्य नीति, विदुर नीति, शुक्र नीति, भृतहरि शतक आदि का अध्ययन करना चाहिये और जानना चाहिये कि किस परिस्थिति में सत्य का किस प्रकार से प्रयोग या व्यवहार किया जाये। हर परिस्थिति में सत्य का समान रूप से प्रयोग स्वयं व देश व समाज के लिए अहितकर हो सकता है। देश में भी बहुत सी गुप्त सूचनायें होती हैं। अधिकारियों को शपथ दिलाई जाती है कि वह उसकी गोपनीयता बनायें रखेंगे अर्थात् सत्य भाषण नहीं करेंगे। उसका पालन न करना दण्डनीय होता है। यहां वेदों के ज्ञान के आधार पर ऋषि दयानन्द द्वारा सत्य से संबंधित बनाये अन्य नियमों को भी प्रस्तुत कर देते हैं। पहला नियम है 'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।' तीसरा नियम है 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।' चौथा नियम है 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।' पांच नियम है 'सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिएं।' हमारे देश के मत-मतान्तरों की स्थिति यह है कि वह वेद सब विद्याओं का पुस्तक है, इस मान्यता को न तो स्वीकार करते हैं और न खण्डन ही करते हैं। इसका कारण उनका स्वार्थ और अज्ञान नहीं तो क्या हो सकता है?

हिंसा व अहिंसा पर भी विचार करते हैं। हिंसा की उत्पत्ति किन्हीं व्यक्ति व प्राणियों में परस्पर वैर वा शत्रुता की भावनाओं के कारण होती है। हमें अपने मन में किसी के प्रति वैर भावना व द्वेष नहीं रखना चाहिये। वैर भावना से की गई हिंसा पाप होती है। अतः अहिंसा की परिभाषा सभी के प्रति वैर भावना का त्याग करना होती है। ऐसी स्थिति में भी बहुत से लोग दूसरों के प्रति द्वेष व शत्रुता रखते हैं। ऐसे लोगों के प्रति यथायोग्य व्यवहार ही उत्तम प्रतीत होता है। सज्जन मनुष्यों के प्रति सज्जनता का और दुष्टों के प्रति दुष्टता का व्यवहार करना ही उचित प्रतीत होता है। कहा भी जाता है कि दूसरों को अपना शोषण व अपने ऊपर अन्याय नहीं करने देना चाहिये। जो दुर्बल, असहाय, वृद्ध, रोगी, निर्धन व धार्मिक हैं उनके प्रति दया व करूणा के भाव रखने चाहियें व उनकी श्री राम व श्री कृष्ण के समान रक्षा करनी चाहिये। सबल, अत्याचारी, अन्यायकारी, अभिमानी, दुष्ट व अधार्मिक लोगों के प्रति सज्जनता का व्यवहार कोई मायने नहीं रखता। उनको नसीहत तभी मिलती है जब उनसे उन्हीं की भाषा व तरीके से व्यवहार किया जाये जो वह दूसरों के प्रति प्रयोग करते हैं। हिंसक के प्रति हिंसा करना कहीं अधर्म नहीं बताया गया है। दुष्टों के प्रति दुष्टता व हिंसकों के प्रति उन्हीं के अनुरूप हिंसा से उत्तर देना ही धर्म सम्मत व्यवहार है। यह सिद्धान्त पूर्णतः गलत है कि कोई आपके एक गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल आगे कर देना चाहिये। इससे तो हिंसा की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। हिंसा करने वाला अधिक दुष्ट व हिंसक हो जाता है और उसकी हिंसा से सज्जन लोग दुःखी होते हैं। ऐसे लोगों

को ऐसा कठोर सबक मिलना चाहिये जिससे वह हिंसा का व्यवहार करने की बात सोच भी न सकें। शहद की मक्खियों से भी शिक्षा ली जा सकती है जहां वह अपने हमलावर को दबोच कर उसे मरणासन्न कर देती हैं। पहले तो हिंसा रोकने का कार्य सरकार को करना चाहिये और आपातकाल में मनुष्य स्वयं भी, जैसा व्यवहार उचित हो, विचार कर कर सकता है। सिद्धान्त यही है कि हमें जानते हुए किसी निर्दोष के प्रति हिंसा नहीं करनी है। टिट फार टैट या यथायोग्य व्यवहार ही सर्वत्र उचित होता है। अतः अहिंसा वा हिंसा की परिभाषा देश काल व परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित हो जाती है। हमें स्वरक्षा को भी महत्व देना चाहिये। अहिंसा का अर्थ यह नहीं की हम अकारण किसी की हिंसा का शिकार हों जायें। ऐसा भी न हो कि हम किसी आततायी या आतंकवादी की हिंसा का शिकार हों जायें। शास्त्र में ऐसी अहिंसा का वर्णन नहीं है। अतीत में देश में अहिंसा की गलत धारणा बनने से भी अपूरणीय क्षति हुई है और इसके कारण हमें वर्षों तक गुलाम रहे हैं। अहिंसा के लिए नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के विचार व व्यवहार तथा हमारे क्रान्तिकारियों की विचारधारा प्रशंसनीय है जिसने हमें आजादी दिलाई थी। हिंसा अहिंसा के लिए रामायण व महाभारत का अध्ययन कर वहां से भी मार्गदर्शन लिया जा सकता है।

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में मनुष्य की परिभाषा दी है। वहां सत्य व अहिंसा का प्रयोग कहां कैसे करना चाहिये, इस पर प्रकाश पड़ता है। वह लिखते हैं 'मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं कि चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, उन की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश (हिंसा), अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करें अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकिरियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करें। इस काम में चाहे उस को कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें, परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक कभी न हों।' ओ३म् शम्।

-मनमोहन कुमार आर्य

पताः 196 चुक्खूवाला-2

देहरादून-248001

फोनः09412985121